

मानव जीवन का मूल्य क्या है?

डॉ० अर्चना प्रिय आर्य

असिस्टेंट प्रोफेसर

संस्कृत विभाग

कनोहर लाल स्नातकोत्तर महिला महाविद्यालय, मेरठ

Reference to this paper should be made as follows:

Received: 30-04-26

Approved: 29-06-26

डॉ० अर्चना प्रिय आर्य

मानव जीवन का मूल्य क्या है?

Vol. XVII, Sp. Issue July, 2026
Article No.04, Pg. 017-022

Similarity Check: 04%

Online available at

<https://anubooks.com/special-issues?url=jgv-si-klsmm-mrt-july-2026>

DOI: <https://doi.org/10.31995/jgv.2026.v17iSI07.004>

सारांश

मानव जीवन को सफल बनाने हेतु चार पुरुषार्थ हैं— धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्ष। इन चार पुरुषार्थों को सिद्ध कर लेना मानव जीवन को सफल बनाने का उपाय है। सच में यह मानव देह प्यारे प्रभु की सर्वश्रेष्ठ कलाकृति है। जन्म—जन्मातंरों की साधना और ईश्वर की असीम कृपा के पश्चात् यह अनमोल हीरा हमें मिला है। ईश्वर, मुक्ति, मोक्ष और आनंद की प्राप्ति का साधन यह मानव शरीर ही है। 'देव यजनि पृष्ठे' हमारा यह मानव शरीर ही देवों की यज्ञस्थली है। इसी में 'सप्त होता, सप्त ऋषय' के अनुसार दो नेत्र, दो कान, दो नासिका छिद्र और एक मुख यह सात ऋषि बैठे हैं। हमारा यह शरीर देवी नौका है, प्रभु प्राप्ति का साधन है यह।

अष्टचक्रा नवद्वारा देवनां पूरयोध्याः

यह आठ चक्र और 9 द्वारों वाली अयोध्या नगरी मानव शरीर रूपी मंदिर ही है, जिसमें प्रियतम प्रभु का मधुर मिलन संभव है। शरीर की एक—एक इन्द्रिय की उपयोगिता और महत्व का विचार करने से प्रभु की कृपाओं का स्मरण कर मन श्रद्धा से भर उठता है और अंदर से यह स्वर फूट पड़ते हैं—

सोचऊँ गुनउ परीखेहु देखा, तुम समान नहिँ हितु सुलेखा।

बहुतकनाथ कृपा तुम कीन्ही, मोहि विधैविधि सुविधादीन्ही।।

सर्वशिरोमणि मानुष काया, दीन्ह मोहि कर अनुपम दाया।

ताहु पर न भजौ तोहि कोहि, मो समान कोउमापर नाहीं।।

**This article has been peer-reviewed by the Review Committee of JGV.*

सामवेद की सूक्ति है— 'देवेभिर्मानुशेजने' देवता का, परमात्मा का निवास कहां है? उसके पास जिसके हृदय में मानवता है, जिसमें वे गुण विद्यमान हैं जिससे मानव मानव बनता है। नहीं तो मनुष्य और पशु में क्या अंतर है? मनुष्य से बढ़कर इस संसार में और कोई श्रेष्ठ योनी नहीं है। सबसे श्रेष्ठ और सबसे जेष्ठ यह मानव का चोला है। महर्षि व्यास कहते हैं— 'नहि मानुषात् श्रेष्ठतरं हि कश्चिद्' अर्थात् इससे श्रेष्ठ कोई नहीं है। मानवता क्या है? मनुष्य कौन है?

आत्मनः प्रतिकूलानि परेशाम न समाचरेत्

जो बात आपको अपने लिए अच्छी नहीं लगे उसे दूसरों के लिए भी मत करो यह है मानवता।

मातृवत् परदारेशु पर द्रव्येशु लोष्ठवत्।

आत्मवत् सर्वभूतेशु यः पश्यति स पण्डितः।।

जो पर नारी को माता के समान, पराये धन को मिट्टी के समान तथा सभी प्राणियों को अपनी आत्मा के समान देखता है— वही पंडित है, वही मानव है। आज मानव भौतिकवाद की चकाचौंध में इतना खो गया है कि उसे कभी याद ही नहीं आता कि मैं कौन हूँ? कहां से आया हूँ? मुझे क्या करना है? और मेरे जीवन का लक्ष्य क्या है? यह प्रश्न तो मानव के मन में उठने ही बंद हो गए हैं और इन प्रश्नों का स्थान दूसरे प्रश्नों ने ले लिया है। उसके मन में प्रश्न उठते हैं कि करोड़पति कैसे बना जा सकता है? चुनाव में दूसरे को मात देकर सांसद कैसे बना जा सकता है? अमुख व्यक्ति की हत्या करके न्यायालय और पुलिस से कैसे बचा जा सकता है? मेरा पड़ोसी इतनी उन्नति कर रहा है उसे कैसे धूल में मिलाया जा सकता है? बस इसी सोच विचार में और धन के चक्कर में मशीन की तरह रात दिन काम करता मर जाता है। कमाया हुआ धन यहीं रह जाता है, कुछ भी तो साथ नहीं जाता। मनुष्य उत्थान की जिस ऊंचाई तक पहुंच सकता है वहां तक राम, कृष्ण, पतंजलि, भारद्वाज, कणाद, जैमिनी, दयानंद आदि महापुरुष पहुंच चुके हैं और वहां तक पहुंचने का पूर्णतः प्रामाणिक एवं प्रायोगिक रास्ता योग भी बता चुके हैं। लेकिन मनुष्य पतन के किस धरातल तक गिर सकता है उसकी सीमा नहीं नापी जा सकती। हमें तो उस दिशा की ओर बढ़ना चाहिए जिसकी अंतिम सीमा अर्थात् गंतव्य निश्चित एवं मार्ग परिक्षित प्रामाणिक और प्रयोगिक हो। हमें सुख—दुख की अधीनता छोड़कर उनके ऊपर अपना स्वामित्व स्थापित करना है और उनमें जो कुछ उत्तम मिले उसे लेकर अपने जीवन को नित्य नया रसयुक्त बनाना है। जीवन को उन्नत करना ही मनुष्य का कर्तव्य है। व्यक्ति केवल धन संग्रह करना जीवन का अंतिम लक्ष्य मानता है, परंतु वास्तविकता तो यह है कि जीवन के अंतिम समय में ऐसे व्यक्ति के पास अधकार दुःख व पश्चाताप के अतिरिक्त कुछ भी नहीं होता। वह सोचता है कि जीवन में मैंने जो पाया वह सब मुझसे छूट रहा है लेकिन तब समय निकल चुका होता है, तब पश्चाताप करने से कुछ भी नहीं होता। संत कबीर ने ठीक ही कहा है—

करना था सो किया नहीं फिर पीछे पछताए।

लगाया पेड़ बबूल का आम कहां से आए।।

आगे दिन पाछे गए किया न हर से हेत।

अब पछताए होत क्या जब चिड़िया चुग गई खेत।।

व्यक्तित्व निर्माण के सूत्रः

हमें सदा ऐसे भावों में जीना चाहिए कि मैं सदा ईश्वर में हूँ और मेरा ईश्वर मुझमें है, मैं सभी में ईश्वर का रूप देखता हूँ, मैं जो भी करता हूँ सब ईश्वर की पूजा है, मैं जो भी प्राप्त कर रहा हूँ सब उसी ईश्वर का प्रसाद है, मैं उस ईश्वर की ही संतान हूँ। विश्व को नियंत्रित करने वाले ब्रह्मांड के रचयिता प्रभु मेरे पिता हैं। विश्व की सर्वोपरि सत्ता की शक्ति का आशीष सदैव मेरे साथ है। पृथ्वी जैसा धैर्य, अग्नि जैसा तेज, वायु जैसा संवेग, पानी जैसी शीतलता और आकाश जैसी विराटता जैसे गुण मेरे परमात्मा ने मुझे पितृ प्रसाद के रूप में दिए हैं। बच्चों जैसी निर्मलता और निर्भीकता, युवकों जैसा जोश, प्रौढ़ जैसा होश तथा सन्यासी जैसा समर्पण ही मेरे जीवन के आदर्श हैं। मुझे मोह माया

की डोरी नहीं बांध सकती है। पराक्रमशीलता, राष्ट्रवादिता, पारदर्शिता, दूरदर्शिता, आध्यात्मिकता, मानव एवं विनय चलता मेरी कार्यशैली के आदर्श हैं। हमें दृढ़ बनना है, जिद्दी व हठी नहीं। बहादुर दिखानी है, कायरता नहीं। दयावान बनना है, कमजोर नहीं। मौन धारण करना है, किंतु घमंड नहीं। चतुर बना है किंतु धोखेबाज नहीं। धीरज रखना है परंतु लापरवाही नहीं। स्वाभिमानी बनना है पर कायर, डरपोक वह बुजदिल नहीं। मधुर बोलना है लेकिन चापलूसी नहीं करनी है। न्याय करना है परंतु बदले की भावना से नहीं। कभी-कभी व्यक्ति सृष्टि व सृष्टा के अस्तित्व पर प्रश्न करता है परंतु विडंबना है कि वह क्षणभंगुर मनुष्य के शरीर असत्य वह गृणा आदि पर कभी भी प्रश्न नहीं करता? ऋषियों का युगों से मनुष्य मात्र के लिए यही संदेश रहा है—

उठो! सदा सकारात्मक बनो, सदा मधुग्रही बनो जिज्ञासु बनो।

प्रतिपल परमात्म कृपा का सस्पर्श अनुभव करो।।

जब विहित कर्तव्य कर्म का निर्वाह हम खूबी मस्ती के साथ करते हैं तो हमारा कर्म ही पूजा बन जाता है।

निन्दन्तु नीति निपुणा यदि वास्तुवन्तु,

लक्ष्मी समाविशतु गच्छतु वा यथेष्टम्।

अद्यैव वा मरणमस्तु युगान्तरे वा,

न्याय्यात्पथः प्रविचलन्ति पदं न धीराः।। नीतिशतम

चाहे जगत निंदा करे या स्तुति, लक्ष्मी आए या जाए, मृत्यु आज हो या बहुत समय बाद, सत्य व धर्म के पथ पर अडिग व धैर्यवान व्यक्ति कभी भी विचलित नहीं होता है क्योंकि सत्य के मार्ग पर चलने वालों के साथ ईश्वर हमेशा साथ रहते हैं। सत्य की सदा प्रतिष्ठा हुई है। उत्तम कोटि के मनुष्य वे ही होते हैं जो असंख्य विघ्न बाधाओं, भयंकर संकटों तथा प्रतिकूलताओं में भी नहीं रुकते और अंत में विजयश्री को प्राप्त करके ही विराम लेते हैं।

लक्ष्य न ओझल होने पाए कदम मिलाकर चल।

मंजिल तेरे पग चूमेगी, आज नहीं तो कल।।

मानव जीवन का सर्वोपरि लक्ष्य उत्कृष्ट परंपराओं की स्थापना करना:

महाभारत में एक प्रसंग उस समय का है जब पांडव अज्ञातवास का समय एक छोटे से गांव में एक ब्राह्मण परिवार में व्यतीत कर रहे थे। उस गांव में एक राक्षस एक घर से प्रतिदिन एक नरबलि लेता था। जिस घर में पांडव ठहरे थे उसी घर में एक नरबलि की बारी आ गई तो उस घर की स्वामिनी यह जानकर रोने लगी तो उसे सांत्वना देते हुए कुंती ने कहा— बहन आप चिंता ना करें, मेरे पांच पुत्रों में से एक तुम्हारे पुत्र के स्थान पर चला जाएगा। ऐसा कहकर कुंती ने पांचो पुत्रों से यह बात कही तो पांचो पुत्र प्रसन्नता से भर उठे कि आज लोकहित के लिए बलिदान देने का अवसर मिलेगा। पांचो पांडव ही इस काम के लिए जाने को तैयार थे इसलिए उनके नाम की पर्ची तैयार कर उनमें से एक को चुनने का उपक्रम किया गया। नाम भीम का निकला और अपना नाम निकालने पर भीम प्रसन्नता से भर उठा और बोला कि आज तो मेरा भाग्य ही खुल गया क्योंकि आज मुझे मानवता के लिए बलिदान देने का अवसर मिल रहा है। यह भाव जो परहित के लिए स्व की बलि देना जानता हो, भारतीय आध्यात्मिक संस्कृति का केंद्र रहा है। इसलिए गोस्वामी तुलसीदास ने रामायण के अंदर धर्म की परिभाषा यूँ कह कर की है—

परहित सरस धरम नहिं भाई।

परि पीडा सम नहीं अधिमाई।।

जहां एक समय इसी देश में भीम ने परहित के लिए बलिदान देने को अपना सर्वोत्तम सौभाग्य माना हो, वहीं आज लोग लॉटरी खुलने को, सरकारी नौकरी मिलने को, विदेश जाने के अवसर को, पुत्र हो जाने को एक सौभाग्य मानते हैं। क्या मानवीय जीवन का सौभाग्य इतने छोटे पैमाने से तय हो सकता है? नहीं। भारतीय चिंतकों ने सदा से

यह माना है कि— मनुष्य जीवन का सर्वोपर लक्ष्य लोकमंगल ही हो सकता है, इसी को आध्यात्मिक विचारधारा की धुरी भी कहा जा सकता है। प्रश्न यह नहीं है कि हम कितनी सुख सुविधाओं को बटोर सके बल्कि प्रश्न यह है कि हमने समाज को अच्छा बनाने के लिए श्रेष्ठ आचरणों को जीवन में धारण करने के लिए उत्कृष्ट परंपराओं की स्थापना के लिए क्या किया है? हम भगवान का भजन घंटों करते हों पर यदि दुःखियों के दुःख को दूर करने के लिए तथा भटकों को राह दिखाने के लिए हमारे अंतःकरण में कोई भाव न उमड़ते हों तो इसका अर्थ यह ही निकाला जाना चाहिए कि अभी हम भारतीय संस्कृति की मूल विचारधारा से अनिविज्ञ रह गए हैं। भारतीय संस्कृति ने सदा से सेवा, करुणा, मानवता के पोषण एवं संरक्षण पर बल दिया है। महर्षि दधीचि का उदाहरण कौन नहीं जानता, जिन्होंने मानवता की रक्षा के लिए अपनी अस्थियां तक दान देने में संकोच नहीं किया। राम भय से नहीं, यश की कामना से नहीं अपितु अपने धर्म का, अपने कर्तव्य का पालन करने की पवित्र भावना से दंडकारण्य में जा रहे हैं। इधर भरत भी घोषणा कर रहे हैं कि जब तक मेरा धर्मात्मा जेष्ठ भ्राता धर्मार्थ वल्कल वस्त्र धारण करके दंडक वन में घोर तप कर रहा है तो भरत भी अयोध्या के महलों में निवास नहीं करेगा। वह भी नंदीग्राम में तपस्वी बनकर प्रजा की सेवा करेगा। वह भी 14 वर्ष राज भोगों का उपभोग नहीं करेगा। अयोध्या के राज सिंहासन पर राजपुत्र नहीं राम के महान तप की प्रतीक चरण पादुकाएं प्रतिष्ठित हैं और ज्ञानवान भरत अक्लेश मन से, समोद हृदय से अयोध्या की प्रजा के पालन में तत्पर हैं। यही उच्च चेतना, ऋषि चेतन मनुष्य को मानव से महामानव, नर से नारायण बनाती है, यही जीवन जीने की कला है। वैदिक संस्कृति का मूल ही यह है— जो कुछ भी हमारे पास है उसे समझना और उसका सदुपयोग करना ही जीवन है। वेद में कहा है कि इस संसार की वस्तुओं का भोग करो परंतु त्याग पूर्वक करो, सोच समझ कर करो। वह कौन भाव है जिसने दशरथ को प्राण त्याग कर भी वचन नहीं हारने दिया और राम को राज्य त्याग कर नव के महान कष्ट सहने को तैयार किया? वह कौन भाव है जिसने असहाय दुखों में भी सीता को विचलित नहीं होने दिया? क्या यह भाव धर्म के अतिरिक्त कोई और है? हिंदी के कवि ने इस बात को इस प्रकार व्यक्त किया है—

मानव होकर मानवता से कितना तुमने प्यार किया है।

इस जीवन में कितना तुमने औरों का उपकार किया है।।

कितनों के अवलंब बने हो कितनों को भर अंग लगाया।

स्वयं गरल पी पीकर तुमने कितनों को पियूष पिलाया।।

अतः मनुष्य जीवन त्याग से ओतप्रोत होना चाहिए। वही मानव जीवन सफल और धन्य है क्योंकि—

माया मिले तो नम्र हो, ईश मिले तो विनीत।

दुखिया देख उदार हो, यह सज्जन की रीत।।

उद्यानं ते पुरुष नावयानम्:

ईश्वर ने विशेष व महान कार्य करने एवं उत्कर्ष के लिए मनुष्य जीवन को बनाया है, पतन के लिए नहीं। मनुष्य जीवन अमूल्य है, जीवन को छोटे उद्देश्यों के लिए जीना जीवन का अपमान है, अपनी शक्तियों को तुच्छ कार्यों में व्यर्थ खर्च करना, व्यसनों एवं वासनाओं में जीवन का बहुमूल्य समय नष्ट करना जीवन का तिरस्कार है। हमारे जीवन और मृत्यु दोनों ही गौरवपूर्ण होने चाहिए— **‘कीर्तिर्यस्य स जीवति’** अर्थात् कायर और कमजोर नहीं अपितु स्वाभिमान वह आत्मज्ञान से पूर्ण विचारवान एवं विवेकवान बनना चाहिए। जीवन का लक्ष्य मात्र भोग, विलास, जुआ, तास, धूम्रपान, मांस एवं मदिरापान, इधर-उधर घूमने व मनोरंजन के लिए नहीं है अपितु सेवा द्वारा दूसरों को सुख सुविधा देने के लिए तथा साधना के द्वारा स्वयं की तृप्ति करने के लिए एवं अखंड सुख व पूर्ण संतुष्टि की प्राप्ति के लिए है। इसी के लिए यह जीवन रत्न मिला है। जीवन में रहने के लिए कुछ फुट जमीन, शरीर रखने के लिए कुछ हाथ का वस्त्र एवं भूख मिटाने के लिए दो समय का भोजन सभी प्राप्त कर लेते हैं परंतु तृष्णा कभी भी समाप्त नहीं होती है। अतः परमपिता परमात्मा वेद में कहते हैं— **‘तेनत्यक्तेन भुञ्जीथा’** अर्थात् त्याग पूर्वक भोग करना चाहिए एवं **‘कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छतं**

समा: अर्थात् निष्काम कर्म करते हुए 100 वर्षों तक संसार में अनासक्त भाव से जीवन यापन करना चाहिए। सूरज न उदित होता है और न हीं अस्त, वह तो अपने पथ पर सृष्टि के आदिकाल से एक ही गति से निरंतर चलायमान है, चलने में ही वह मस्त व्यस्त है। उसे देखने वाले सृष्टि के आदिकाल से ही कभी सूरज उदय हो गया और कभी ढल गया ऐसा कहते हैं, कभी सुबह हो गई और कभी शाम हो गई ऐसा कहते हैं। सूरज बेखबर रहता है, वह अपने कर्तव्य पथ पर बिना थके बिना रुके गतिमान है। **‘चरैवेति चरैवेति’**— हमें भी अपने कर्तव्य पथ पर ईमानदारी परिश्रम एवं निष्ठा पूर्वक निरंतर चलते रहना चाहिए, कहने वाले जो मर्जी कहते रहें।

व्यक्तित्व निर्माण में आहार की भूमिका:

सदा स्मरण रखना चाहिए कि हमारा जीवन खाने के लिए नहीं अपितु खाना जीवन के लिए है। एक किंवदंति है महर्षि चरक ने प्रश्न किया की कौन स्वस्थ है? इसके उत्तर में वाग्भट्ट नामक विद्वान ने कहा— **“हितभुक्, मितभुक्, ऋतभुक्”** अर्थात् अपनी प्रकृति के अनुसार हितकारी, उचित मात्रा और उचित प्रकार से अर्जित भोजन करने वाला व्यक्ति ही स्वस्थ रहता है। हमें अपने मन पर संयम रखना चाहिए। सिर्फ स्वाद के लिए नहीं अपितु स्वास्थ्य के लिए खाना चाहिए। संयम की साधना करने वाला व्यक्ति विलक्षण शक्तियों और क्षमताओं का स्वामी बन जाता है। आहार का प्रभाव मन पर पड़ता है। सात्विक अन्न खाने से मन शुद्ध होता है, राजसिक अन्न से मन में चंचलता आती है और तामसिक अन्न मोह, आलस्य व प्रमाद आदि उत्पन्न करता है। मानव जीवन को स्वस्थ बनाने हेतु आहार, निद्रा और ब्रह्मचर्य का उत्तम प्रकार से व्यवहार करना होता है। आज व्यक्ति अपने आहार के प्रति जितनी उपेक्षा करता है उतनी उपेक्षा शायद वह किसी के प्रति नहीं करता होगा। जो केवल अपने लिए भोजन पकाते हैं, वे पाप के भागी हैं किंतु जो यज्ञ में आहुति देने के बाद यज्ञशेष को ग्रहण करते हैं वे सब पाप करने से बच जाते हैं। गीता में भगवान कृष्ण कहते हैं—

यज्ञशिष्टाशिनः सन्तो मुच्यन्ते सर्व किल्बिषैः।

भुञ्जते ते त्वघं पापा ये पचन्त्यात्मकारणात्।। गीता 3.13

हमारा शरीर ही देवालय व शिवालय है, यह शरीर ही ईश्वर का पवित्र मंदिर है, इसको शराब पीकर सुरालय व खैनी, अफीम, गुटका, भांग, सुल्फा, चरस, गांजा, व तंबाकू आदि खा पीकर रोगालय तथा मांस आदि खा कर शवालया न बनाइये। **‘ऋतभुक्’** व **‘हितभुक्’** बनकर समयानुसार सात्विक संतुलित एवं प्राकृतिक आहार का सेवन कर शरीर को स्वस्थ रखना चाहिए। **‘आरोग्य प्रत्येक व्यक्ति का जन्म सिद्ध अधिकार है’**, इसके साथ ही साथ दूसरों को खिलाकर खाओ, देवताओं—प्राणियों को देकर खाओ इसमें असीम तृप्ति है ऐसा न करना चोरी है। यज्ञ से बचे हुए को खाने वाले संत हैं, वे सब पापों से छूट जाते हैं और वे पापी पाप खाते हैं जो केवल अपने लिए ही पकाते हैं।

यज्ञशिष्टाशिनः सन्तो मुच्यन्ते सर्व किल्बिषैः।

प्रत्येक मानव भगवान का मंदिर है मनुष्य की सेवा प्रभु की सेवा है, ऐसी सेवा से व्यक्ति निश्चित रूप से ऊपर उठता है। मानव जीवन का लक्ष्य है— प्रभु दर्शन। **‘इयं तं यज्ञिया तनूः’** यह शरीर प्रभु दर्शन पाने के लिए मिला है क्योंकि और किसी शरीर में प्रभु दर्शन नहीं होता। जब तक व्यक्ति **‘अयं निज परोवेति’** की तुच्छ भावना को छोड़कर **‘वसुधैव कुटुंबकम्’** की भावना को आत्मसात नहीं कर लेता तब तक मानव जीवन सफल नहीं हो सकता। इस संसार में मानव जीवन का बहुत महत्व है, अगर हमारे उत्थान के लिए इस संसार की आवश्यकता नहीं होती तो भगवान संसार को कभी नहीं बनाता। संत तुलसीदास ने **‘बड़े भाग मानुष तन पावा’** कहकर इसके महत्व को दर्शाया है। यह यज्ञमय जीवन वह है जिसमें व्यक्ति कर्म करता है तो कर्तव्य की भावना से करता है, निष्काम भाव से करता है। इस विश्वास के साथ कि सब कुछ यहीं रह जाता है। इस कारण कोई पाप नहीं करूंगा, कोई अन्याय नहीं करूंगा, किसी को कष्ट नहीं दूंगा— ऐसा व्यक्ति जब नौकरी करता है तो रिश्त नहीं लेता, दुकानदारी करता है तो ब्लैक मार्केट नहीं करता, देश का नेता बनता है तो देश के साथ विश्वासघात नहीं करता, कोई भी काम करते समय वह यह नहीं भूलता कि मैं आत्मा हूँ। इस प्रकार आत्म भाव से किया हुआ कर्म बंधन पैदा नहीं करता, यही निष्काम कर्म है, यही मानव जीवन

का सार है कि— कर्म दूसरों की भलाई के लिए प्रत्येक समय करना उचित है। स्वामी दयानंद सरस्वती ने जीवन का मूल्य बताते हुए कहा है— ‘प्रत्येक को अपनी ही उन्नति से संतुष्ट नहीं रहना चाहिए किंतु सब की उन्नति में अपनी उन्नति समझनी चाहिए’। राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त ने भारत भारती में इस प्रकार चित्रण किया है—

वे आर्य ही थे जो कभी अपने लिए जीते न थे।

वे स्वार्थरत हो मोह की मदिरा कभी पीते न थे।।

संसार के उपकार हित जब जन्म लेते थे सभी।

निश्चेष्ट होकर किस तरह वे बैठ सकते थे कभी।।

मनुष्य जीवन का यही सार है कि व्यक्ति का धन, यौवन, संतान और सब कुछ यश का कारण बने। वेद में कहा कि इस संसार की वस्तुओं का भोग करो परंतु त्याग पूर्वक करो, सोच समझ कर करो। वह कौन सा भाव है जिसने दशरथ को प्राण त्याग कर भी वचन नहीं हारने दिया? और राम को राज्य त्याग कर वन के महान कष्ट सहने को तैयार किया? वह कौन सा भाव है जिसने असाह्य दुखों में भी सीता को विचलित नहीं होने दिया? क्या यह भाव धर्म के अतिरिक्त कोई और है? जब व्यक्ति ‘इदन्नमम्’ को स्व जीवन में उतार कर जीता है तो फिर घोषणा पूर्वक कहता है—

अयं निजः परोवेति गणनालघु चेतशाम्।

उदारचरित्रानामतु वसुधैव कुटुम्बकम्।।

संदर्भ

1. चाणक्य नीति — महर्षि चाणक्य — आर्य साहित्य प्रचार ट्रस्ट दिल्ली।
2. वैदिक सूक्ति संग्रह — डॉ गंगा सहाय प्रेमी — हरीश प्रकाशन मंदिर, आगरा।
3. यज्ञमय जीवन — ईश्वरीय प्रसाद प्रेम — सत्य प्रकाशन, मथुरा।
4. वैदिक स्वर्ग की झाकियां — आचार्य प्रेमभिक्षु वानप्रस्थ — सत्य प्रकाशन, मथुरा।
5. विचार क्रांति — आचार्य बालकृष्ण — दिव्य प्रकाशन, पतंजलि योगपीठ, हरिद्वार।
6. साधना पथ — आचार्य प्रद्युम्न — पतंजलि योगपीठ, हरिद्वार।
7. वैदिक विचारधारा का वैज्ञानिक आधार — डॉ. सत्यव्रत सिद्धांतालंकार — विजयकुमार गोविंदराम, नई सड़क दिल्ली।
8. विशुद्ध मनुस्मृति — सुरेन्द्र आर्य — आर्य साहित्य प्रचार ट्रस्ट, दिल्ली।
9. सत्यार्थ प्रकाश — महर्षि दयानंद सरस्वती — वैदिक पुस्तकालय दयानंद, अजमेर।